प्रवचन नं. ११७ श्लोक-३४ दिनाङ्क २४-१०-१९७८, मंगलवार
आसोज कृष्ण ८, वीर निर्वाण संवत् २५०४

हे भव्य! ऐसा सम्बोधन किया है। तू ऐसा कर-ऐसा कहा न, इसलिए भव्य लिया। **हे भव्य! तुझे अन्य व्यर्थ 'अकार्य-कोलाहलेन'...** राग, वह मेरा कार्य है; राग, वह मैं हूँ- ऐसा '**अकार्य-कोलाहलेन**' छोड़ दे। आहाहा! जो शुभराग है, वह भी व्यर्थ-अकार्य कोलाहल (है)। वह मेरा है.. वह कार्य तेरा नहीं, आहाहा! वह तेरा स्वरूप ही नहीं। आहाहा!

श्रोता : स्वरूप नहीं, यह तो ठीक है, परन्तु कार्य किसका है?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका (आत्मा का) कार्य नहीं। राग, वह अकार्य है। अकार्य शब्द का अर्थ यहाँ 'व्यर्थ' किया है, परन्तु इसका अर्थ, वह कार्य इसका नहीं है। आहाहा! जो राग है, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का हो या गुण-गुणी के भेद का विकल्प / राग हो, वह अकार्य है, वह व्यर्थ की चीज है। आहाहा! (यह तो) जिसे हित करना हो, उसकी बात है, बापू! बाकी तो अनन्त काल से भटक रहा है। आहाहा! '**अकार्य-कोलाहलेन' कोलाहल करने से क्या लाभ है?'...** प्रभु! तुझे। आहाहा! यह शुभराग मेरा है और शुभराग मेरा कार्य है-ऐसे व्यर्थ के कोलाहल से, ऐसे अकार्य से तुझे क्या कार्य होगा? तुझे क्या लाभ होगा? आहाहा! **इस कोलाहल से तू विरक्त हो।** आहाहा!

उपदेश तो क्या कहे! वरना तो वास्तव में तो कोलाहल से विरक्त होना, ऐसा भी वहाँ नहीं है; वहाँ तो द्रव्यस्वभाव चैतन्य अमृत का सागर भगवान ध्रुव, उसकी दृष्टि करने से कोलाहल से विरक्त हो जाता है। आहाहा! ऐसा मार्ग! उपदेश में क्या आवे? इस कोलाहल से विरक्त हो।

श्रोता : पुण्य-पाप को कोलाहल कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस पुण्य का परिणाम के कार्य से भिन्न हो - ऐसा कहते हैं। आहाहा! इस कोलाहल से विरक्त हो। **एक चैतन्यमात्र वस्तु..** देखो! **निभृततासन! निश्चल लीन होकर..** आहाहा! **षणमासमुपश्य** देख; **ऐसा छह माह अभ्यास कर..** ऐसा कहते हैं। वह द्रव्यस्वभाव एकरूप चैतन्यमात्र वस्तु को देख। देखता है, वह परिणाम है, परन्तु उसे देख; परिणाम को देख-ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बाते हैं।

यह भगवान अन्दर परमात्मस्वरूप विराजता है न, प्रभु! आहाहा! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण का महाप्रभु, अनन्त गुण का एकरूप। यह गुणी और गुण – ऐसा भी नहीं, अनन्त गुणस्वरूप द्रव्य। इसलिए **एक चैतन्यमात्र वस्तु..** कहा न? वहाँ अनन्त गुण का भेद भी नहीं – ऐसा कहते हैं। आहाहा! एक चैतन्यमात्र वस्तु है, भगवत्स्वरूप, परमेश्वर –स्वरूप (वस्तु है), उसे देख। पर को देखने की क्रिया तो तूने अनन्त बार की है, परन्तु देखनेवाले को तूने देखा नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं! देखनेवाली, वह पर्याय है परन्तु पर्याय से पर को देखा, किन्तु यह वस्तु अखण्ड चैतन्य है, उसे नहीं देखा। ऐसी बाते हैं, भाई!

श्रोता : देखने की विधि क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं न! यह स्वरूप है चैतन्यमात्र वस्तु, इसे देख; परिणाम से इसे देख; परिणाम को परिणाम से देख – ऐसा नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है न, बापू! यह तो वचन में उसका कितना आवे! यहाँ तो प्रभु! एक समय में प्रभु पूर्णानन्द का नाथ स्वयं विराजमान है। उस सिद्ध की पर्याय से भी अनन्तगुनी ताकतवाला वह तत्त्व है, स्वयं भगवान; यह आत्मा, हों! आहाहा! ऐसी एक चैतन्यमात्र वस्तु। यह गुणी है और यह गुण है – यह भी भेद हो गया। आहाहा! एकरूप चैतन्यवस्तु है, उसे परिणाम जो वर्तमान, उससे उसे (वस्तु को) देख। परिणाम को परिणाम से देख, यह नहीं। सूक्ष्म बातें, बापू! दुनिया से निराली बातें हैं, भाई! आहाहा!

उत्पादव्ययध्रुव युक्तं सत्, तथापि उस उत्पाद-व्यय की पर्याय से ध्रुव को देख; पर्याय से पर्याय को न देख; पर्याय से पर को न देख। इस तो कोलाहल से विरक्त हो – ऐसा कहा है, आहाहा! परन्तु भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, तीर्थंकर परमेश्वर ने जो केवलज्ञान में देखा कि तेरा – आत्मा का स्वरूप तो पूर्ण आनन्दकन्द ध्रुव है। ऐसा जो अन्दर भगवान (है), उसे तू देख। तेरी दृष्टि वहाँ लगा, आहाहा! यह तो भेद से कथन है – दृष्टि को और लगा। कथन में क्या आवे? हें! देख – ऐसा कहा; दूसरा क्या आवे? तो देखनेवाली तो पर्याय है, परन्तु देखे किसे? ध्रुव भगवान पूर्णानन्द प्रभु (को देखे)। उस पर्याय में पर्याय को भी मत देख, पर्याय में रागादि आवें, उन्हें न देख; आहाहा! उस पर्याय में ध्रुव को देख। बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त-अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी ध्रुव को नहीं देखा और उसके बिना चौरासी के अवतार में भटक मरता है। आहाहा! वह दुःख

से जला हुआ है। आहाहा! उसे दु:ख से जलाया हुआ पर्याय में, हों! वस्तु दु:ख से जली नहीं। आहाहा! उसे देख।

आचार्य, करुणा से कहते हैं, प्रभु! **छह माह अभ्यास कर..** तेरे अंग्रेजी के और एल.एल.बी. के और एम.ए. के पूंछड़े (डिग्रियाँ) दस-दस वर्ष किये और वहाँ पाप के पोथे बाँधकर वहाँ पढ़ता है, रहता है। यह है न अभ्यास बी.ए. का क्या कहलाता है? यह सब व्यापारियों का और अमुक का यह सब आता है न? ऐसे अभ्यास पाँच, सात, दस-दस वर्ष कर, धूल का, पाप का अकेला। आहाहा! एक छह माह तो प्रभु! इस ओर ले आ। तेरा घर है, उसे देखने को छह माह तो अभ्यास कर। आहाहा! इसका अर्थ पण्डित जयचन्दजी करेंगे। **छह मास अभ्यास कर..** आहाहा! **और देख..** इसका अर्थ किया है, जरा।

ध्रुव विद्यमान परमार्थ प्रभु, तेरा नाथ परमात्मस्वरूप प्रभु विराजता है, आहाहा! उसे खोज न! तूने दूसरी बहुत खोज की। आहाहा! इस शास्त्र वांचन से भी वह मिले, ऐसा नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! शास्त्र सुनने से भी वह मिले - ऐसा नहीं है। आहाहा! वह तो अन्तर्मुख तत्त्व है और अन्तर्मुख के परिणाम से अन्तर्मुख को ही देख। आहाहा! दूसरा क्या करे वहाँ? आहाहा! यह परिणाम है और इससे ऐसा देखता हूँ - ऐसा वहाँ नहीं है, परन्तु समझाने में क्या आवे? आहाहा! अन्तर में वस्तु पड़ी है, प्रभु परमेश्वर, स्वयं परमेश्वर है। आहाहा! भगवान भगवन्तस्वरूप हैं तू। आहाहा! उसे एक बार छह महीने तो खोज कि क्या है वह? दूसरी चपलता और चंचलता छोड़कर... निभृत कहा है न?

अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, 'सिद्ध समान सदा पद मेरो'... यह पर्याय की अपेक्षा नहीं। सिद्धसमान-द्रव्यस्वभाव सिद्धसमान त्रिकाल है। समझ में आया? भाई! यह तो धर्मोपदेश है, यह तो वीतराग तीन लोक के नाथ.. आहाहा! तीर्थंकरदेव की यह वाणी है, उसका यह भाव है। आहाहा! भगवान की वाणी में ऐसा आया, प्रभु! तेरी प्रभुता से भरी हुई चैतन्यवस्तु.. आहाहा! जिसमें से तो अनन्त सिद्ध की पर्याय प्रगट हो, ऐसे तो अनन्त गुण का सागर प्रभु है न! आहाहा! अत: तुझे सिद्ध हुए उन पर भी नजर करनी नहीं है; सिद्ध जिस भाव से हुए, उस भाव पर भी तुझे नजर करनी नहीं है। आहाहा! वे सिद्ध जिसके अवलम्बन से हुए.. आहाहा! - ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे तू देख न प्रभु! आहाहा! छह महीने तो वहाँ जा न, एक बार! उसके लिये छह महीने तो निकाला। आहाहा!

ऐसा करने से... है ? **हृदयसरसि** अन्तर ज्ञानसरोवर भगवान भरा है अन्दर। अन्तर के परिणाम से देख तो अन्तर के परिणाम में हृदय में भरा हुआ भगवान.. आहाहा! **हृदय सरोवर में पुद्गलात् भिन्नधाम्नः जिसका तेज भिन्नधाम्नः** है न? धाम्नः अर्थात् तेज जिसमें। चैतन्य का तेज.. जैसे सूर्य का तेज, जैसे चन्द्र का तेज, वह तो जड़ है। चैतन्य के तेज से भरा हुआ, चैतन्यस्वरूप ही भगवान, भगवान, आहाहा! यह भी भेद हुआ। आहाहा! **पुद्गलात् भिन्नधाम्नः जो तेज-प्रताप..** यह धाम्नः की व्याख्या है। **तेज-प्रताप और प्रकाश पुद्गल से..** अर्थात् रागादि जो पुण्य, दया, दान का विकल्प है, वह पुद्गल है। आहाहा! ऐसी बात कठिन पड़ती है न, फिर क्या करे? भाई! परन्तु तेरा कर्तव्य तो यह है, यदि हित करना हो तो, भटकना बन्द करना हो तो; बाकी भटकने के काम तो अनादि से कर ही रहा है, वह कोई नयी चीज नहीं है। आहाहा! एक-एक दिन की लाखों की आमदनी, आहाहा! करोड़ों की आमदनी - ऐसे भव अनन्त बार हुए हैं, आहाहा! परन्तु यह (आत्महित) करने की ओर झुकाव नहीं है। आहाहा! ओहोहो!

अपने हृदय सरोवर में.. आहाहा! **तेज-प्रताप-प्रकाश..** यह धाम्नः के अर्थ हैं तीनों। **पुद्गल से भिन्न ऐसे पुंसः पुंसः** पुरुष आत्मा, आहाहा! ऐसा जो पुंसः अर्थात् पुरुष अर्थात् आत्मा, अन्दर पूर्णानन्द से भरा हुआ भगवान, पूर्णानन्दस्वरूप भरा हुआ, **ऐसे उस आत्मा की अनुपलब्धि भाते..** न पावे - ऐसी उसकी शोभा है? आहाहा! पावे ऐसी उसकी शोभा है। **अनुपलब्धि प्राप्ति नहीं होती है या होती है ?..** इसका अर्थ ऐसा है कि अन्तर वस्तु भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसे देखे तो प्राप्ति न हो - ऐसा कैसे बने, कहते हैं। परवस्तु को अपनी करनी हो तो न बने, परन्तु जो स्वयं है, उसकी अप्राप्ति-अनुपलब्धि कोई शोभे इसे!

वस्तु भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप चैतन्यवस्तु को देख, छह मास अभ्यास कर। न प्राप्ति की शोभा इसे नहीं होती; प्राप्त हो, यह इसकी शोभा है। प्राप्त होती ही है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसके साथ छह-छह महीने देखने की नजरें की; नजर की नजर छोड़कर। नजर ने नजर से निधान को देखा। ऐसी बातें हैं, बापू! दुनिया से पूरी फेरफार... सब पता है न, बापू! यहाँ तो। आहाहा! आहाहा! **भिन्न है..** ये राग के परिणाम पुद्गल हैं। आहाहा! इनसे चैतन्य प्रकाश **धाम्नः** अर्थात् प्रकाश पुंज अत्यन्त भिन्न है, वह प्राप्त होगा ही।

अनुपलब्धि भातेः न प्राप्त हो, यह शोभा नहीं वहाँ। प्राप्त हो, यही उसकी शोभा है। आहाहा! आहाहा! भाषा तो है परन्तु भाव, बापू! कठिन है। आहाहा! यह **धाम्नः पुद्गलात** चैतन्य का तेज प्रभु, इस राग के पुद्गल से अत्यन्त भिन्न..। राग है, यह दया, दान का विकल्प, प्रभु! आहाहा! एक ओर आत्माराम और एक ओर पुद्गल हराम, आहाहा! ऐसे शुभभाव जो हैं, वे पुद्गल हैं; भगवान आत्मा उनसे भिन्न चैतन्य के तेज से भरपूर प्रभु तुझे प्राप्त होगा। उसमें ही उसकी शोभा है। आहाहा! वस्तु है, उस पर ऐसी नजर छह-छह महीने करे, वह उसकी शोभा है, प्राप्त होगी ही। आहाहा! ऐसा उपदेश अब! अनजाने नये व्यक्ति को तो, (लगे कि) क्या कहते हैं! यह पागल जैसी बातें हैं ये सब। सत्य बापा! आहाहा!

अरे! इसे देखने को छह महीने तो समय ले - ऐसा कहते हैं। इसका स्पष्टीकरण करेंगे (कि) यह तो अन्तर्मुहूर्त में प्राप्त होता है, परन्तु किसी को कठिन लगे तो छह महीने की अवधि दी। आहाहा! अरे! संसार के लिये अनन्त काल दिया न, प्रभु तूने! भटकने के रास्ते में तो तूने अनन्त काल दिया; अब छूटने के रास्ते में - परमात्मा की तरफ जाने के रास्ते में छह महीने तो निकाल! पोपटभाई! ऐसी बात है। उपलब्धि होगी ही होगी - ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! अरे! पंचम काल है न? पंचम काल में तो शुभभाव ही होता है - ऐसा कहते हैं, शुभयोग! अरे भगवान! क्या हुआ, भाई! श्रुतसागर है न, एक बड़े साधु, उनने बाहर प्रसिद्ध किया है - पंचम काल में तो शुभयोग ही होता है। अरे भगवान! भगवान! तुझे यह कहना शोभा देता है? यहाँ शुभयोग को तो पुद्गल कहा है। है? और यहाँ पंचम काल के श्रोता को कहा है, पंचम काल के सन्तों ने पंचम काल के श्रोता को कहा है। यह अड़तीस गाथा में आ गया है न, भाई! अड़तीस में। पंचम काल के साधु ने पंचम काल के श्रोता को कहा, गुरु ने बारम्बार समझाया। केवली ने समझाया, वह-अभी यहाँ नहीं है, इसलिए वह बात यहाँ कहाँ? यहाँ कोई केवली नहीं, अभी तो यह मुनि की बात है। आहाहा!

सन्त, जिन्हें भव का आ गया अन्त; और जिन्हें मोक्ष वर्तता है समीप - ऐसा सन्तों ने श्रोता को समझाया। अनादि से अप्रतिबद्ध-अज्ञानी था। पहली लाईन (गाथा ३८ की टीका) है - अनादि से अप्रतिबुद्ध मूढ़ था, आहाहा! ऐसे पंचम काल के श्रोता को पंचम काल के सन्त ने समझाया। आहाहा! तब अपने वहाँ (गाथा) अड़तीस में आया था - वह

श्रोता स्वयं समझ गया पंचम काल में। आहाहा! मैं शुद्ध चैतन्यघन, उसका दर्शन-ज्ञान और चारित्र का आचरण किया.. आहाहा! और वह श्रोता ऐसा कहता है कि अब मैं इस प्रकार जो प्राप्त हुआ, उसमें अब मैं गिरनेवाला नहीं हूँ। चारित्र की बात अलग, परन्तु वस्तु जो प्राप्त हुई.. वह कोलकरार, श्रोता ऐसी कोलकरार करता है.. आहाहा! - हम गिरनेवाले नहीं हैं। हम आगमकुशल और स्वरूप की प्राप्ति जो की, आहाहा! वह पंचम (काल) में शुभयोग की प्राप्ति की? शुभयोग को तो पुद्गल कह दिया है। इसे काल कहाँ बाधक है! त्रिकाली चीज में जहाँ परिणाम का प्रवेश नहीं, वहाँ फिर काल-फाल की कहाँ बात करना! पंचम काल हो या नरक का क्षेत्र हो, क्षेत्र-क्षेत्र,.. आहाहा! और शरीर की रोग से घिरी हुई अवस्था हो; काल, नरक क्षेत्र और यह (रोग से घिरी दशा), इस चीज (आत्मा) को प्राप्त करने में विघ्न करे - ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। आहाहा!

भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने यह उपदेश किया है। आहाहा! वहाँ तो ऐसा कहा था, और यहाँ भी यह ही कहा - 'विरम्' पा जाएगा, कहते हैं। अरे! पंचम काल में शुभभाव से आगे नहीं जा सकता न, प्रभु! ऐसा नहीं है, भाई! रहने दे। आहाहा! इस पंचम काल में शुभभाव जो बन्ध का कारण और पुद्गल, उससे भिन्न पड़कर प्राप्त हो, यह पंचम काल के आत्मा का एक प्रकार और प्रभाव है। उसे काल रोकता नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात कहाँ है? आहाहा!

श्रोता : कहीं न हो तो यहाँ तो है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान में पड़ी है न अन्दर। आहाहा! ऐसे **आत्मा की प्राप्ति नहीं होती है या होती है?...** यह तो एक शब्द लिया है अर्थात् कि इस प्रकार होती नहीं - ऐसा बनता ही नहीं। और यहाँ तो यह भी उसका वर्णन करते हैं। वह प्राप्ति हुई, वह अप्रतिहतभाव से हुई है, कहते हैं। आहाहा! उसका भाव प्राप्त हुआ, वह कभी गिरेगा - यह बात तीन काल में है न। आहाहा! देखा? यह श्लोक, इस श्लोक की शलाका, इस श्लोक में स्तुति आयी है। आहाहा! थोड़ा हो, समझे, उसका कुछ नहीं परन्तु मूल वस्तु चाहिए न? आहाहा! जिसे आत्मा, जो मूल-मोक्ष का मूल जिसमें पड़ा है। आहाहा! अरे! जो मुक्तस्वरूप प्रभु है। आहाहा!

श्रोता : प्रभु! अभ्यास करे और प्रकाश करे - इसमें क्या अन्तर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभ्यास अर्थात् अन्तर देखने का; यह पढ़ने का, वह नहीं। त्रिकाली ज्ञायक को देखने का छह महीने तो अभ्यास कर। अभ्यास अर्थात् यह वाँचना, पढ़ना, यह कुछ नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

अनजान व्यक्ति को तो ऐसा लगे कि यह क्या कहते हैं? बापू! तुम कौन हो और क्या हो? - यह हमें पता नहीं? पूरी दुनिया को हम जानते हैं, कैसी जाति है। आहाहा! बापू! वीतरागस्वरूप ऐसा कहते हैं, भाई! तुझे सुनने को नहीं मिला, इसलिए उसे विशिष्टता लगे। - ऐसा नहीं है।

भगवान-अनन्त तीर्थंकरों के समवसरण की सभा में ऐसी पुकार करते हैं। वह पुकार, सन्त लेकर आये और जगत का प्रसिद्ध किया (कि) परमात्मा ऐसा कहते हैं। आहाहा! तेरा प्रभु अन्दर विराजता है, उसका यदि छह महीने अभ्यास करे.. जघन्य अन्तर्मुहूर्त में ही वह प्राप्त होता है, आहाहा! परन्तु कोई कठिन लगे और पंचम काल तथा तेरी बुद्धि थोड़ी है - ऐसा लगे तो छह महीने लगेंगे। आहाहा!

भावार्थ... लोगों की दलील क्या है? कि यह सब दया, दान, व्रत, भक्ति, तप - यह कोई उपाय है या नहीं? यहाँ तो कहते हैं कि ये सब भाव तो पुद्गल के हैं न, प्रभु? आहाहा! तुझे इन्हें उपाय में डालना है? आहाहा! क्या हो भाई?

यदि अपने स्वरूप का अभ्यास करे.. अर्थात् स्वयं है, चैतन्यस्वरूप भगवान है, उसका यदि अभ्यास करे, **तो उसकी प्राप्ति अवश्य होती है..** आहाहा! प्राप्त की प्राप्ति है; है, उसे प्राप्त करना है। वह तो है, है उसे प्राप्त करना है और वह तो है। आहाहा! ऐसी बाते हैं। **अपने स्वरूप का अभ्यास..** अपने स्वरूप जो चैतन्यस्वरूप - जो कायमी त्रिकाली है.. है.. है, उसका अभ्यास करे, उस ओर की एकाग्रता का अभ्यास करे तो उसकी प्राप्ति अवश्य होती ही है। प्राप्त की प्राप्ति है। है, उसकी प्राप्ति होती है। आहाहा!

आहाहा! **यदि परवस्तु हो तो उसकी तो प्राप्ति नहीं होती..** वास्तव में तो कहते हैं कि राग का तेरा करना चाहे, तो नहीं होता। शरीर को करना चाहे, तब तो नहीं होता परन्तु राग को तेरा करना चाहे अन्दर नित्य में, तो राग तो है विकृत और पुद्गलस्वभाव, आहाहा!

वह नहीं होगा। परन्तु है, उसे प्राप्त करना, प्रभु! इसमें कहाँ नहीं हो – ऐसा होगा। आहाहा! आहाहा! क्या सन्तों की भाषा! दिगम्बर मुनि, केवली के पथानुगामी, एक-दो भव में केवल(ज्ञान) लेनेवाले, कितने ही तो। मोक्ष जानेवाले मोक्ष, सिद्धपद! उनकी यह वाणी – ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! वाणी में उनका निमित्त था, इसलिए (कहा जाता है।) निमित्त का अर्थ – वे वाणी के कर्ता नहीं, तब निमित्त कहलाया न? आहाहा! उसमें (वाणी में) यह आया, आहाहा! भगवान! तेरी चीज अन्दर विराजमान है न! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय वीतरागता, अतीन्द्रिय प्रभुता, अतीन्द्रिय स्वच्छता – ऐसे स्वभावस्वरूप प्रभु है न तू! उसकी प्राप्ति तो अवश्य होती है। परवस्तु हो तो उसकी न हो। राग को तू तेरा करना चाहे तो नहीं, कभी नहीं हो। आहाहा! शरीर, वाणी, स्त्री, पुत्र तो कहीं धूल रह गये। वे तो कहीं हैं, वे कहाँ तेरे थे? आहाहा!

परन्तु अन्दर राग जो है, पर्याय में निमित्त के आधीन हुआ राग, वह तेरे गुणस्वभाव में उसे करना चाहे तो नहीं होगा, क्योंकि इसके (आत्मा के) गुण सब पवित्र हैं। उस पवित्र में राग इसका किसी प्रकार नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया? परमात्मप्रकाश में व्यवहाररत्नत्रय को शुभयोग कहा है। वह शुभयोग है। शुभयोग तो पुद्गल है। यहाँ तो उसे (पुद्गल) कहा। वीतराग केवली परमेश्वर ने उसे पुद्गल कहा है; तो उसे अपना करना चाहे तो नहीं होगा। आहाहा! चैतन्य भगवान में उस पुद्गल के परिणाम को अपना करना चाहे तो वह नहीं हो सकेगा; परन्तु भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु की अन्दर धगश और लगनी लगी हो तो वह प्राप्त होगा ही। आहाहा!

अपना स्वरूप तो विद्यमान है... न? देखा! भगवान अन्तर चैतन्यस्वरूप से विद्यमान है न? अस्ति है न? आहाहा! मौजूद है न? अस्ति धरता है न? अस्तिरूप है न? अस्तिरूप सत् सत् अस्तिरूप स्वयं है न? आहाहा! परन्तु भूल रहा है। आहाहा! भगवत् आत्मस्वरूप, चैतन्यस्वरूप, अन्दर विद्यमान है, परन्तु उस ओर की नजर नहीं की और उसका अनादर करके, राग को, पुण्य और पाप को, यह और यह,.. आहाहा! यह मेरे – करके माना, परन्तु मेरा हुए नहीं। समझ में आया? आहाहा!

किन्तु उसे भूल रहा है; यदि सावधान होकर देखे... सावधान होकर देखे,

आहाहा! ज्ञायकभाव है, उसे सावधान होकर जाननहार भाव से देखे। आहाहा! जो जाननस्वभाव है, उसे जाननभाव से सावधान होकर देखे। आहाहा! भाषा तो थोड़ी / संक्षिप्त है, बापू! आहाहा! वह विचारा भव्यसागर लिखते हैं न! अरे रे! हमने आत्मज्ञान के बिना साधुपना ले लिया। कल पढ़ा था न भाई पत्र? कल दोपहर का तुम नहीं थे। आत्मज्ञान बिना हमने साधुपना ले लिया - ऐसा विचारा। हमें वहाँ बुलाओ। बहुत लिखता है, कल पत्र आया है। ऐसे तो बहुत पत्र आते हैं। कल अन्तिम पत्र आया है, पूरा पत्र.. बुलाओ.. बुलाओ.. कौन बापू! यहाँ कहाँ बुलावें? यहाँ किसी को बुलाते नहीं और यहाँ तो वापस अभी रहने का भी नहीं है, बाहर जाने का होगा। हम आत्मज्ञान पाये नहीं और आत्मज्ञान बिना हमें साधुपना दे दिया, ले लिया। यह विचारा! यह कल्याण का पंथ! हम वहाँ लेने-सुनने के इच्छुक हैं। साधु विचारा, बीस वर्ष की दीक्षा, दिगम्बर! शीघ्र कवि है। बारम्बार लिखते हैं। परन्तु वास्तव में तो आना हो तो अपने आप आवे, यहाँ जिम्मेदारी किसी की (नहीं लेते)! आहाहा!

सावधान होकर देखे तो निकट ही है.. जागृत होकर जागृत को देखे तो वहाँ ही है। जागृत होकर देखे तो वहाँ ही है जागृत, पूरा चैतन्यस्वरूप वहाँ ही है। आहाहा! भाषा बहुत सरल, भाव बहुत गम्भीर, बहुत ऊँचे। आहाहा! यह कोई विद्वता की वस्तु नहीं है। आहाहा! **सावधान होकर देखे तो निकट ही है..** पण्डित जयचन्द तो देखो! राग को देखते-देखते, मेरा मानकर अनन्त काल गया, परन्तु हुआ नहीं तेरा, किन्तु सावधान होकर अन्दर राग से भिन्न पड़कर सावधान होकर देख, तो वस्तु तू स्वयं ही है। सावधान होकर देखे तो चेतनेवाला जागृत स्वभाव तू ही है। आहाहा!

यहाँ छह मास के अभ्यास की बात कही है, इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि इतना ही समय लगेगा.. ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! **उसका होना तो अन्तर्मुहूर्त मात्र में ही है।** 'अन्तर्मुहूर्त' उपयोग है न ऐसा, इसलिए कहते हैं, बाकी तो एक समयमात्र में होता है, परन्तु उपयोग छद्मस्थ के ख्याल में आवे, वह अन्तर्मुहूर्त में ही ख्याल में आता है; आहाहा! इसलिए अन्तर्मुहूर्त अर्थात् अड़तालीस मिनिट में, दो घड़ी के अन्दर। मुहूर्त है और दो घड़ी का, इसलिए उसके अन्तर अन्दर। आहाहा! बी.ए. का अभ्यास और एल.एल.बी. का अभ्यास दो घड़ी में नहीं होता। हें! और यह अभ्यास तो दो घड़ी में-

अन्तर्मुहूर्त में हो जाता है। आहाहा! चैतन्य भगवान पूर्णानन्दस्वरूप.. अन्यमत में कहते हैं 'में नजर ने आलसे रे में निरख्या न नयने हरि' 'मेरी नजर के आलसे रे में निरख्य नयने हरि।' हरि अर्थात् भगवान। राग-द्वेष और अज्ञान को हरे, वह हरि - ऐसा प्रभु, वह आत्मा। आहाहा! मेरे नयन के आल से.. आता है, पोपटभाई! आहाहा! मेरे नयन पर में रह गये, परन्तु नयन के आलसे मैंने अन्दर के भगवान को नहीं देखा.. आहाहा! और देखने को अन्तर्मुहूर्त ही काल लगता है। आहाहा!

परन्तु यदि शिष्य को बहुत कठिन मालूम हो तो उसका निषेध किया है। यदि समझने में **बहुत काल लगे तो छह मास से अधिक नहीं लगेगा।** प्रभु! लगनी लगा इसकी। आहाहा! ज्ञायक भगवान की लगनी लगा। आहाहा! **इसलिए अन्य निष्प्रयोजन कोलाहल का त्याग करके..** यह शुभभाव भी निष्प्रयोजन कोलाहल है। आहाहा! इस शुभभाव में प्रयोजन नहीं है। **निष्प्रयोजन कोलाहल का त्याग करके इसमें लग जाने से...** भगवान पूर्णानन्द वस्तु है, मौजूद है, असित है, आहाहा! **इसमें लग जाने से शीघ्र ही स्वरूप ही प्राप्ति हो जाएगी..** शीघ्र स्वरूप की प्राप्ति होगी ही। आहाहा! कहो, ऐसा उपदेश है। वर्तमान श्रोता को भी ऐसा कहते हैं। आहाहा! पंचम काल के श्रोता को पंचम काल के सन्त कहते हैं कि अवश्य तुझे (प्राप्ति होगी)। उस चैतन्यमूर्ति का अभ्यास कर अन्दर देखने का, अवश्य मिलेगा तुझे। शुभयोग से तुझे शीघ्र मिलेगा (- ऐसा नहीं कहा)।

श्रोता : विश्वास दिलाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हें! तब यह कहे - पंचम काल में शुभयोग ही होता है। अरे! प्रभु.. प्रभु! क्या किया तूने? प्रभु! यह तूने? वीतरागमार्ग लज्जापद पाता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि मौजूद चीज है न, प्रभु! वीतरागस्वरूपी चैतन्य प्रभु जिनबिम्ब मौजूद है न? आहाहा! है, उसे प्राप्त करना है न? मौजूद है न? परन्तु इसे विश्वास में कहाँ आता है? आहाहा! राग होने पर भी, पर्याय में पर्याय होने पर भी, यह वस्तु पूर्ण है - ऐसा इसे विश्वास नहीं आता.. आहाहा! क्योंकि काम लेना है पर्याय से; और विश्वास लेना है त्रिकाली का। आहाहा! हें! तो पर्याय में इसके स्वभावसन्मुख होवे, तब इसे विश्वास आवे कि यह वस्तु पूर्ण आनन्दस्वरूप भगवान है। आहाहा! **स्वरूप की प्राप्ति हो जाएगी-ऐसा उपदेश है।** देखो! ऐसा उपदेश है।

यह तो गृहस्थाश्रम में रहनेवाले पण्डित जयचन्दजी लिखते हैं। वह तो मुनिराज की बात है। आहाहा! ऐसा नहीं कहते कि तुमको शुभयोग ही रहेगा। आहाहा! तुम पंचम काल में भी यदि शुभयोग से भिन्न पड़कर यदि सावधान होओगे तो शुभयोग से भिन्न तुम्हें प्राप्त होगा ही; शुभयोग ही रहेगा - ऐसा नहीं है, पुद्गल ही रहेगा - ऐसा नहीं है; चैतन्य आयेगा। प्रवीणभाई! ऐसी पुकार है।

श्रोता : जागता जीव खड़ा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जागता जीव खड़ा है। बहिन की बात है न! जागता जीव खड़ा है न! कहाँ जाए? बहिन का वाक्य पहला है न? जागता (जीव), जागृतस्वरूप जीव खड़ा है न! खड़ा अर्थात् ध्रुव है न! खड़े की व्याख्या ऐसी है। जागता जीव ध्रुव है न! वह कहाँ जाए? जरूर प्राप्त होगा। आहा! आहाहा!

अब ऐसा उपदेश! उन क्रियाकाण्डियों को कठिन लगता है। भगवान! बापू! तेरे स्वरूप की बात है न, प्रभु! क्रियाकाण्ड में तो राग है। वह तो पुद्गल है, भाई! तुझे पता नहीं। आहाहा! उससे भिन्न '**धाम्नो**' शुभयोग पुद्गल है, उससे भिन्न **धाम्नो**-चैतन्य का तेज तुझे प्राप्त होगा। आहाहा! चैतन्य का तेज-प्रकाश.. आहाहा! है न? प्रताप-तीन बोल लिये है - तेज, प्रताप और प्रकाश। आहाहा! यह चौतीस कलश हुआ।

गाथा ४५

कथंचिदन्वयप्रतिभासेप्यध्यवसानादयः पुद्गलस्वभावा इति चेत्–

अट्ठविहं पि य कम्मं सव्व पोग्गलमयं जिणा बेंति।
जस्स फल तं वुच्चदि दुक्खं ति विपच्चमाणस्स।।४५।।

अष्टविधमपि च कर्म सर्वं पुद्गलमयं जिना ब्रुवन्ति।
यस्य फलं तदुच्यते दुःखमिति विपच्यमानस्य।।

अध्यवसानादिभावनिर्वर्तकमष्टविधमपि च कर्म समस्तमेव पुद्गलमयमिति किल सकलज्ञज्ञप्तिः। तस्य तु यद्विपाककाष्ठामधिरूढस्य फलत्वेनाभिलप्यते तदनाकुलत्वलक्षण–सौख्याख्यात्मस्वभावविलक्षणत्वात्किल दुःखं, तदंतःपातिन एव किलाकुलत्वलक्षणा अध्यवसानादिभावाः। ततो न ते चिदन्वयविभ्रमेप्यात्मस्वभावाः किंतु पुद्गलस्वभावाः।

अब शिष्य पूछता है कि इन अध्यवसानादि भावों को जीव नहीं कहा, अन्य चैतन्यस्वभाव को जीव कहा; तो यह भाव भी कथञ्चित् चैतन्य के साथ सम्बन्ध रखनेवाले प्रतिभासित होते हैं, (वे चैतन्य के अतिरिक्त जड़ के तो दिखाई नहीं देते), तथापि उन्हें पुद्गल के स्वभाव क्यों कहा ? उसके उत्तरस्वरूप गाथासूत्र कहते हैं—

रे! कर्म अष्ट प्रकार का, जिन सर्व पुद्गलमय कहे।
परिपाक में, जिस कर्म का फल दुःख नाम प्रसिद्ध है॥४५॥

गाथार्थ - [अष्टविधम् अपि च] आठों प्रकार का [कर्म] कर्म [सर्वं] सब [पुद्गलमयं] पुद्गलमय है ऐसा [जिनाः] जिनेन्द्रभगवान सर्वज्ञदेव [ब्रुवन्ति] कहते हैं - [यस्य विपच्यमानस्य] जो पक्व होकर उदय में आनेवाले कर्म का [फलं] फल [तत्] प्रसिद्ध [दुःखम्] दुःख है [इति उच्यते] ऐसा कहा है।

टीका - अध्यवसानादि समस्त भावों को उत्पन्न करनेवाला जो आठों प्रकार का ज्ञानावरणादि कर्म है, वह सभी पुद्गलमय है—ऐसा सर्वज्ञ का वचन है। विपाक की मर्यादा को प्राप्त उस कर्म के फलरूप से जो कहा जाता है वह, (अर्थात् कर्मफल) अनाकुलतालक्षण-सुखनामक आत्मस्वभाव से विलक्षण है, इसलिए दुःख है। उस दुःख में ही आकुलतालक्षण अध्यवसानादि भाव समाविष्ट हो जाते हैं; इसलिए यद्यपि वे चैतन्य के साथ सम्बन्ध होने का भ्रम उत्पन्न करते हैं, तथापि वे आत्मस्वभाव नहीं हैं किन्तु पुद्गलस्वभाव हैं।

भावार्थ - जब कर्मोदय आता है, तब यह आत्मा दुःखरूप परिणमित होता है और दुःखरूप भाव है, वह अध्यवसान है। इसलिए दुःखरूप भावों में (अध्यवसान में) चेतनता का भ्रम उत्पन्न होता है। परमार्थ से दुःखरूप भाव, चेतन नहीं है, कर्मजन्य है, इसलिए जड़ ही है।

गाथा - ४५ पर प्रवचन

अब, शिष्य पूछता है कि इन अध्यवसानादि भावों को जीव नहीं कहा.. भगवान ने इन्हें जीव नहीं कहा; दया, दान का शुभभाव हो, उसे जीव नहीं कहा, और **अन्य चैतन्यस्वभाव को जीव कहा - तो यह भाव चैतन्य के साथ सम्बन्ध रखनेवाले प्रतिभासित होते हैं..** आहाहा! यह शुभभाव-राग, यह दया, दान का विकल्प-राग, यह चैतन्य के साथ सम्बन्ध दिखता है, यह कहीं परमाणु के साथ सम्बन्ध है-ऐसा नहीं दिखता। समझ में आया? **चैतन्य के साथ सम्बन्ध रखनेवाले प्रतिभासित होते हैं..** आहाहा! **(चैतन्य के अतिरिक्त जड़ को तो दिखते नहीं), तथापि उन्हें पुद्गल स्वभाव क्यों कहा ?** भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी पर्याय में पुण्य-पाप का भाव तो दिखता है, चैतन्य के साथ सम्बन्धवाला दिखता है; वे पुद्गल-जड़ के साथ सम्बन्धवाले तो दिखते नहीं, तो भी प्रभु! उन्हें तुमने पुद्गल का स्वभाव क्यों कहा? चैतन्य की पर्याय में सम्बन्धवाले शुभ-अशुभ दिखते हैं और आप कहते हो कि वे जड़ हैं; यह हमें किस प्रकार समझाया? आहाहा!

ऐसा शिष्य का अन्तर का समझने का प्रश्न है। शंका नहीं, आशंका है। प्रभु! आप इसमें क्या कहते हो? शुभ-अशुभभाव, वह जड़! हमें तो शुभ-अशुभभाव, चैतन्य की पर्याय के सम्बन्ध में होते हैं; वे शुभ-अशुभभाव, वे परमाणु में या कर्म में-जड़ में होते नहीं। आहाहा! देखो! यहाँ योग्यतावाला श्रोता लिया है। वह श्रोता ऐसा है कि अन्दर पकड़ा है कि यह आप क्या कहते हो, प्रभु? आहाहा! शुभ-अशुभभाव तो चैतन्य की पर्याय में सम्बन्धवाले दिखते हैं न? वे कहीं कर्म और जड़ और शरीर के सम्बन्ध में वे नहीं है, तथापि आप उन्हें जड़ कहो; आहाहा! **उसके उत्तरस्वरूप गाथासूत्र कहते हैं..** उसका उत्तर है। यह संस्कृत है, हों! है न ऊपर **कथंचिदन्वयप्रतिभासेप्यध्यवसानादयः पुद्गलस्वभावा इति चेत्-** संस्कृत है ऊपर। स्वयं अमृतचन्द्राचार्य स्वयं ही प्रश्न रखकर शिष्य का प्रश्न कहा है। शिष्य ऐसा हो, जिसे समझना हो यह। प्रभु! तुमने, चैतन्य के साथ पुण्य-पाप के भाव का सम्बन्ध होने पर भी, तुमने उन्हें पुद्गल कहा, वह किस प्रकार? - हमें पकड़ में नहीं आता। आहाहा! इसका उत्तर आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)